श्रीमती शशि नैय्यर
बनाम
भारत संघ एवं अन्य

29 अक्टूबर, 1991

(के०एन० सिंह, पी०बी० सावंत, एन०एम० काशलीवाल,
बी०पी० जीवन रेड्डी एवं जी०एन० रे, न्यायमूर्तिगण)

भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 32- दण्डित बंदी की पत्नी द्वारा रिट याचिका- मृत्यु दण्ड- का औचित्य- फांसी-वैज्ञानिक व कम पीड़ादायी।

भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 21- मृत्यु दण्ड-दण्डित- असंवैधानिक नहीं।

याचिका कर्ता का पति अपने पिता एवं सौतेले भाई की मृत्यु कारित करने हेतु धारा 302 भा०दं०सं० के अन्तर्गत विचारित।

सत्र न्यायाधीश द्वारा मृत्यु दण्ड की सजा सुनायी गयी।

अपील में उच्च न्यायालय द्वारा मृत्यु दण्ड की पुष्टि की गयी जिसके विरूद्ध इस न्यायालय के समक्ष अनुमति याचिका दाखिल की गयी और वह भी निरस्त की गयी।

पुनर्विचार याचिका भी उसके द्वारा दाखिल की गयी। वह भी निरस्त की गयी।

जम्मू-कश्मीर के गवर्नर एवं भारत के राष्ट्रपति के समक्ष दायर दया याचिका भी अस्वीकृत। भारत के राष्ट्रपति द्वारा निरस्त दया याचिका को अभियुक्त द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 में इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया, वह भी निरस्त की गयी।

जम्मू-कश्मीर के उच्च न्यायालय के समक्ष एक अन्य याचिका संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत सजा को रद्द करने हेतु दायर की गयी जिसे उच्च न्यायालय द्वारा निरस्त किया गया।

26.10.1991 को याचिका कर्ता के पति, निंदित कैदी को फांसी होनी थी।

याचिका कर्ता द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 में उपरोक्त याचिका मृत्यु दण्ड की वैधता को चुनौति देने हेतु इस प्रार्थना के साथ दायर की गयी कि उसके पति की सजा को रद्द किया जाये।

उक्त याचिका खण्डपीठ द्वारा 25.10.1991 को सुनी गयी और उक्त विषय को संविधान पीठ को निंदित कैदी की सजा के निष्पादन पर रोक लगाये जाने हेतु निर्दिष्ट किया गया।

याचिका कर्ता द्वारा कथन किया गया कि मृत्यु दण्ड भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लघन है। जो किसी व्यक्ति को उसके जीवन से वंचित होने से रोकता है, मृत्यु दण्ड समाज के किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता और यह असभ्य मृत्यु की सजा किसी व्यक्ति को नहीं दी जानी चाहिये क्योंकि इसका कोई निवारक असर नहीं है। मृत्यु दण्ड की सजा का पीड़ित के परिवार पर अमानवीय असर होता है और वह संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत सार्थक जीवन के मौलिक अधिकार से वंचित होता है। मृत्यु दण्ड की सजा का फांसी द्वारा निष्पादन असभ्य और अमानवीय है और इस सजा के निष्पादन को किसी अन्य उचित व कम पीड़ादायी सजा से प्रतिस्थापित किया जाना चाहिये।

इस न्यायालय द्वारा याचिका निरस्त की गयी और यह अभिनिर्धारित किया गया कि-

1.कानून के अन्दर मृत्यु दण्ड को दुर्लभतम मुकदमों में दिया जाना चाहिये। मृत्यु दण्ड की सजा का प्रावधान कानून द्वारा स्थापित किया गया है उससे संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं होता है। मृत्यु दण्ड की सजा का निष्पादन द्वारा फांसी वैज्ञानिक एवं कम पीड़ादयी प्रक्रिया है। (106 G, 107 F)

2.मृत्यु दण्ड का निवारक प्रभाव होता है और वह सामाजिक उद्देश्य की सेवा करता है, देश के समाजिक परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये मृत्यु दण्ड को समाप्त करने का यह समय उचित नहीं है।

3.न्यायिक अवेक्षा से यह स्पष्ट होता है कि इस देश की कानून व्यवस्था 1967 से अभी तक सुधरी नहीं है और समय के साथ यह और बिगड़ती जा रही है। इसलिये यह समय इस विषय के कानून पर पुनर्विचार हेतु अनुपयुक्त है। (107 E)

जगमोहन बनाम उ०प्र० राज्य., (1973) 1 एसएससी 20; बच्चन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1973) 3 एसएससी 727; दीना उर्फ दीनदयाल व अन्य. बनाम भारत संघ बनाम अन्य।, (1983) 4 एसएससी 645,

मूल क्षेत्राधिकारः रिट याचिका (क्रिमिनल) नं० 1339/1991

(अन्तर्गत भारत के संविधान के अनुच्छेद 32).

आर०के० जैन, ए० मरियारपुथम, सुश्री अरूणा माथुर, उदय ललित, शंकर सी० घोष और सुश्री चंचल गांगुली वास्ते याचिका कर्ता ।

न्यायालय का निर्णय दिया गया।

के०एन०सिंह, न्यायमूर्ति, शशि नैयर पत्नी राजगोपाल नायर जिसे धारा 302 भारतीय दण्ड संहिता (भा०दं०सं०, संक्षिप्त में) मृत्यु दण्ड की सजा सुनायी गयी। जो इस न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 32 के द्वारा उपस्थित आये और मृत्यु दण्ड की संवैधानिक वैधता को चुनौति दी।

याचिका कर्ता के पति राजगोपाल नायर पर अपने पिता व सौतेले भाई की मृत्यु का अपराध अन्तर्गत धारा 302 भा०दं०सं० के अधीन विचारण चला। सत्र न्यायालय द्वारा निर्णय और आदेश दिनांक 24.04.1986 से राजगोपाल नायर को मृत्यु दण्ड की सजा सुनायी गयी। अपील में उच्च न्यायालय द्वारा मृत्यु दण्ड की सजा की पुष्टि की गयी और राजगोपाल द्वारा दायर अपील निरस्त की गयी। राजगोपाल द्वारा तदोपरान्त विशेष रिट याचिका सत्र न्यायालय और हाईकोर्ट के आदेश को चुनौति देते हुये इस न्यायालय में दाखिल की गयी परन्तु वह विशेष रिट याचिका भी इस न्यायालय द्वारा निरस्त की गयी। अभियुक्त द्वारा दाखिल पुनर्विचार याचिका भी इस न्यायालय द्वारा निरस्त की गयी। फलस्वरूप अभियुक्त की फांसी की सजा इस न्यायालय द्वारा स्वीकृत की गयी। जिसके उपरान्त उसके द्वारा जम्मू-कश्मीर के गवर्नर और भारत के राष्ट्रपति के समक्ष दया याचिका दायर की गयी, परन्तु वह भी निरस्त कर दी गयी। उसके द्वारा भारत के राष्ट्रपति द्वारा निरस्त की गयी दया याचिका के विरूद्ध संविधान के अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत रिट याचिका दायर की गयी वह भी निरस्त की गयी। एक अन्य याचिका जम्मू-कश्मीर हाईकोर्ट के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 226 में सजा को रद्द करने हेतु दायर की गयी वह भी निरस्त की गयी। कानून प्रक्रिया न्यायालय के समक्ष समाप्त होने के उपरान्त उसको 26.10.1991 को फांसी होनी थी। श्रीमती शशि नायर याचिका कर्ता द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत उपरोक्त याचिका इस न्यायालय के समक्ष दायर कर राजगोपाल नायर की मृत्यु दण्ड की सजा को रद्द करने हेतु प्रस्तुत किया गया। खण्डपीठ द्वारा उपरोक्त याचिका पर 25.10.1991 को सुना गया और उक्त को संविधान पीठ के समक्ष विचार हेतु प्रस्तुत किया गया और उस दौरान निंदित कैदी की सजा को स्थगित किया गया।

श्री रवि के० जैन, याचिका कर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निम्नलिखित निवेदन किये गयेः-

1. मृत्यु दण्ड भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है क्योंकि यह अनुच्छेद किसी व्यक्ति को जीवन से वंचित करने पर पूरी तरह से प्रतिबन्ध लगाता है।

2. मृत्यु दण्ड किसी भी सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता है और बिना किसी अध्ययन के किसी भी व्यक्ति को मृत्यु दण्ड की असभ्य सजा नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि इसका कोई निवारक प्रभाव नहीं है।

3. मृत्यु दण्ड की सजा का पीड़ितों के करीबी सम्बन्धियों पर अमानवीय प्रभाव पड़ता है और यह उन्हें संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत सार्थक जीवन के मौलिक अधिकारों से वंचित करता है।

4. फांसी द्वारा मृत्यु दण्ड देना असभ्य एवं अमानवीय है। सजा को निष्पादित करने में इसके स्थान पर कोई अन्य सभ्य और कम पीड़ादायक तरीका अपनाया जाना चाहिए।

श्री जैन द्वारा उठाये गये प्रश्नों पर इस न्यायालय द्वारा पहले ही एक से अधिक अवसरों पर विस्तार से विचार किया जा चुका है। जगमोहन सिंह बनाम यू०पी० राज्य,(1973) 1 एस०सी०सी० 20 और बच्चन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1979) 3 एस०सी०सी० 727 में, इस न्यायालय ने विस्तरित विचार-विमर्श के बाद माना कि मृत्यु दण्ड संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं है। बच्चन सिंह के मामले में (पूर्वोक्त) में अदालत में प्रश्न संख्या 4 को छोड़कर इस याचिका में उठाये गये सभी सबालों पर विचार किया और बहुमत के फैसले ने एक विस्तरित तर्क संगत आदेश द्वारा इसे खारिज किया गया। चूंकि हम उन कारणों से पूरी तरह सहमत है, इसलिये हम उन्हें दोहराना जरूरी नहीं समझते।

विद्वान अधिवक्ता ने आगे आग्रह किया कि जगमोहन सिंह व बच्चन सिंह (पूर्वोक्त) के मामले में लिया गया दृष्टिकोण गलत है और इस पर एक बड़ी पीठ द्वारा पुनर्विचार की आवश्यता है। इसलिये, उन्होंने हमसे इस मामले को एक बड़ी बैंच को सौंपने का अनुरोध किया क्योंकि यह एक नागरिक के जीवन से सम्बन्धित सवाल है। उन्होंने आग्रह किया कि मृत्यु दण्ड देना एक गंभीर मामला है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करते हुये एक नागरिक को उसके जीवन से वंचित कर देता है और इसलिये अदालत को इस मामले पर फिर से विचार करना चाहिये। हम मृत्यु दण्ड दिये जाने के प्रभाव से पूरी तरह सचेत है, लेकिन हमारी राय है कि कानून द्वारा प्रदान की गयी मृत्यु दण्ड की सजा इस न्यायालय द्वारा दुर्लभतम मामलों में ही दी जानी चाहिये। मृत्यु दण्ड देने के लिये कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया उचित है और यह किसी भी तरह से अनुच्छेद 21 के आदेश का उल्लंघन नहीं करती है। बच्चन सिंह और जगमोहन सिंह विषय में (पूर्वोक्त) बहुमत द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण से हम सहमत हैं। हमे विषयों को बड़ी बैंच को सन्दर्भित करने के लिये कोई वैध आधार नहीं मिला। विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया कि बच्चन सिंह मुकदमे (पूर्वोक्त) में बहुमत की राय 35 वां विधि आयोग की 1967 की आख्या पर आधारित है। जिसमें दी गयी सिफारिशों का सारांश निम्नलिखित हैः-

> “हालांकि भारत की परिस्थितियां यहां के निवासीयों के सामाजिक पालन-पोषण की विविधता, देश में नैतिकता और शिक्षा के स्तर में असमानता, इसके क्षेत्र की विशालता, जनसंख्या की विविधता को ध्यान में रखते हुये वर्तमान समय में देश में

कानून और व्यवस्था को बनाये रखने की सर्वोपरि आवश्यकता के कारण भारत मृत्यु दण्ड को समाप्त करने के प्रयोग का जोखिम नहीं उठा सकता है।"

श्री जैन ने आग्रह किया कि उपरोक्त रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि 1967 में विधि आयोग की राय थी कि देश को मृत्यु दण्ड समाप्त करने के प्रयोग का जोखिम नहीं उठाना चाहिये। हालांकि, तब से बहुत समय व्यतीत हो चुका है। इसके अलावा न्यायालय के समक्ष यह दिखाने के लिये कोई अनुभव जन्य अध्ययन नहीं है कि 1967 में जो स्थिति थी वह अभी भी जारी है। इसलिये कोर्ट को इस मामले पर दोवारा विचार करना चाहिये। हमे इस निवेदन में कोई योग्यता नहीं दिखती। मृत्यु दण्ड का निवारक प्रभाव होता है और यह एक सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति करता है। बच्चन सिंह के मामले (पूर्वोक्त) में बहुमत की राय यह थी कि हमारे देश की सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये इसे समाप्त करने का जोखिम लेने के लिये अभी स्थिति उपयुक्त नहीं है। यह दिखाने के लिये हमारे सामने कोई तथ्य नहीं रखा गया कि बच्चन सिंह के मामले में अपनाये गये दृष्टिकोण पुनर्विचार की आवश्यकता है। इसके अलावा इस तथ्य पर न्यायिक संज्ञान लिया जा सकता है कि देश में कानून और व्यवस्था की स्थिति न केवल 1967 के बाद से सुधरी है, बल्कि कुछ वर्षों में खराब हुयी है और आज तेजी से बिगड़ रही है। इसलिये वर्तमान समय में इस विषय के कानून पर पुनर्विचार करने का उचित समय नहीं है। इसलिये मामले को बड़ी बैंच को सौंपने का अनुरोध खारिज किया जाता है।

जहां तक फांसी द्वारा मृत्यु दण्ड के निष्पादन की विधि का सम्बन्ध है इस कोर्ट ने दीना उर्फ दीनदयाल एवं अन्य बनाम भारत राज्य एवं अन्य (1983) 4 एस०सी०सी० 645 के मामले में भी इसी पर विस्तार से विचार किया और माना कि गर्दन से फांसी देना मृत्यु दण्ड का वैज्ञानिक व सबसे कम पीड़ादायी तरीका है। एक अलग दृष्टिकोण अपनाने का हमें कोई औचित्य नहीं मिला। हालांकि, श्री जैन के द्वारा हमारे संज्ञान में लाया गया कि इस न्यायालय के एक विद्वान न्यायाधीश ने अवकाश पीठ में राज्य को यह नोटिस जारी किया गया कि क्या फांसी द्वारा मृत्यु दण्ड दिया जाना एक क्रूर एवं असामान्य प्रक्रिया है। इसलिये उन्होंने आग्रह किया कि हमें इसमें सुनवायी करनी चाहिये। इस याचिका को स्वीकार करें और इस प्रश्न पर विचार करें। चूंकि मृत्यु दण्ड के निष्पादन के तरीके पर पहले ही दीनदयाल के मामले (पूर्वोक्त) पर विचारण किया जा चुका है इसलिये इस न्यायालय को कोई भी अन्य कारण नहीं मिला।

राजगोपाल नायर की मृत्यु दण्ड की सजा पर उच्च न्यायालय द्वारा पहले ही तर्क संगत विचार किया जा चुका है और इस न्यायालय द्वारा विभिन्न चरणों में लगातार कैदी के विरूद्ध इसका जवाब

दिया जा चुका है। इसलिये याचिका विफल होती है और तदानुसार खारिज की जाती है। अन्तरिम राहत आदेश दिनांक 25.10.1991 को निरस्त किया जाता है।

वी०पी०आर० **याचिका खारिज।**